ऋग्वैदिक रोगघ्न उपनिषद् : सूर्य किरण-चिकित्सा का विज्ञान

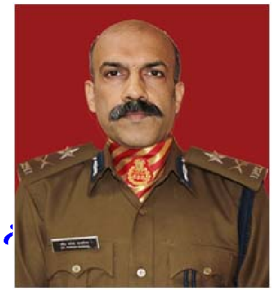

डॉ परेश सक्सेना*

ऋग्वैदिक काल से ही हमारे ऋषिगण चिकित्सा की दृष्टि से सूर्य की किरणों का महत्त्व जानते रहे हैं। उन्होंने रोगों का नाम लेकर स्पष्ट संकेत किया है कि इनसे बचने के लिए हमें सूर्य-किरणों का सेवन करना चाहिए। यहाँ से सूर्योपासना की एक विशेष पद्धति का आरम्भ हुआ है- तृच-साधना, जिसे प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन के समय आवश्यक माना गया। लेखक आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान के अध्येता रहे हैं। उन्होंने आधुनिक शोधों के आलोक में ऋग्वेद की तृच-साधना पर विमर्श प्रस्तुत किया है।

हिन्दू समाज के धार्मिक आचारों और लोक व्यवहार में सूर्य प्रति आस्था सर्वविदित है। सूर्य को साक्षात् भगवान नारायण मानकर प्रतिदिन स्नान के उपरान्त जल अर्पित करना अथवा विधिवत् रोली आदि डालकर अर्घ्यदान करना एक सर्वमान्य धार्मिक आचार है। गायत्री मन्त्र प्रत्येक हिन्दू के लिए नित्य स्मरणीय है, भले ही वह त्रिकाल संध्या न करे । कोणार्क (ओडिशा), देवकुण्ड (बिहार) और मोढेरा (गुजरात) के प्राचीन सूर्य मन्दिर प्रसिद्ध हैं। हमारे बहुत से मन्दिरों के निर्माण में इस प्रकार के वास्तु शिल्प का अनुप्रयोग किया गया है कि दिन के प्रत्येक प्रहर में सूर्य का प्रकाश किसी न किसी गवाक्ष से मंदिर के भीतर पहुँच सके। उष्ण कटिबन्ध में स्थित भारतवर्ष में सूर्य के मकर राशि में संक्रमण के साथ उत्तरायण के प्रारम्भ को बहुसंख्यक हिन्दू समाज द्वारा बहुत श्रद्धा और उत्साह के साथ मनाया जाता है। मकर संक्रान्ति के पर्व-त्योहारों को भारतवासी विविध नामों से जानते हैं- पंजाब में लोहड़ी, आन्ध्र में भोगी, तमिलनाडु में पोंगल, असम में बिहू, बिहार में दही-चूड़ा, उत्तर प्रदेश में खिचड़ी, गुजरात और राजस्थान में माघी पतंगोत्सव, आदि । बिहार का छठ तो सूर्य उपासना का अप्रतिम पर्व है। वैदिक वाङ्मय, महाकाव्यों और पुराणों में सूर्य की पूजा के मन्त्र, स्तोत्र और विधान उपलब्ध हैं। आयुर्वेद की परम्परा में चिकित्सकों द्वारा शारीरिक दुर्बलता दूर करने के लिए, और अस्थियों-माँसपेशियों की क्षति अथवा राजयक्ष्मा,

* *भा. पु. से., बिहार संवर्ग, सम्प्रति केन्द्रीय प्रतिनियुक्ति, गृह मंत्रालय, सशस्त्र सीमा बल, नई दिल्ली।*

कुष्ठ-जैसी बहुत सी पुरानी व्याधियों के उपचार के लिए रोगी को औषधीय तैल से मर्दन कर धूप स्नान कराना स्वास्थ्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण उपकर्म है। घर के पुराने समानों और अनाजों, शाक, आदि को धूप में सुखाना एक गृहणी को भलीभाँति ज्ञात होता है क्योंकि सूर्य किरणों में सूक्ष्म जीवों को नष्ट करने की शक्ति है। सूर्य किरणों का सेवन कब और कैसे हो, इसका व्यवहारिक और धार्मिक ज्ञान हमारी सनातन धार्मिक परम्परा से आया है जिसका उद्गम वेद हैं।

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" का उद्घोष करनेवाले वेदों में सूर्य अपने सप्त आदित्य, जैसे मित्र, वरुण, पूषण, भग, इन्द, विष्णु, आदि स्वरूपों में प्रतिष्ठित हैं और एक स्वतन्त्र देव के रूप में भी पूजित हैं। ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं में अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से सूर्य का ऐसा दर्शन किया है, जिसकी बहुत सटीक व्याख्या आधुनिक विज्ञान के पैमाने पर भी की जा सकती है।

इस आलेख में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूक्त 50 की अंतिम तीन ऋचाएँ, अर्थात् 11वें, 12वें और 13वें मन्त्रों को, जिन्हें आचार्य सायण ने शौनक की अनुकमणी के सन्दर्भ से 'रोगघ्न उपनिषद्' कहा है, पर आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के दृष्टिकोण से विचार किया गया है। सायणाचार्य ने भाष्य में लिखा है कि तीन ऋचाएँ रोगशान्ति के लिए हैं। इन तीन ऋचाओं से त्वचा सम्बन्धी दोषों की शान्ति के लिए प्रस्कण्व ऋषि ने सूर्य की स्तुति की थी। इन तीन ऋचाओं से प्रार्थित होकर सूर्य ने उस ऋषि को रोगमुक्त किया था। अतः इस समय भी रोगशान्ति के लिए इन तीन ऋचाओं से सूर्य की उपासना करनी चाहिए ।

"तदुक्तं शौनकेन-

उद्यन्नद्येति मन्त्रोऽयं सौरः पापप्रणाशनः ।
रोगघ्नश्च विषघ्नश्च भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥'
इति॥"

अर्थात् आचार्य शौनक ने कहा है- उद्यन् इत्यादि यह सूर्यमन्त्र पापनाशक है, रोगनाशक है, विष के प्रभाव को दूर करता है तथा भोग और मोक्ष प्रदान करता है। "बृहद्देवता" में **रोगघ्नस्तृच उत्तमः**, यानि अन्तिम त्रिक रोगघ्न है लिखते हुए आगे स्पष्ट किया गया है कि

रोगापनुत्तिराद्याभ्याम् उद्यन्निस्युत्तमे तृचे।
अर्धर्चे तु द्विषद्वेषः

अन्तिम तीन ऋचाओं में प्रथम दो में रोग को भगाने का विधान है जबकि अन्तिम की अर्द्धऋचा में ऋतुओं के प्रति द्वेष व्यक्त किया गया है।

रोगघ्न उपनिषद् के तीनों मन्त्र अर्थ सहित इस प्रकार हैं:-

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं ममस सूर्य हरिमाणं च नाशय॥11॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि॥12॥
उदगादसयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्ध्यन्मो अहं द्विषते रधम्॥13॥

अर्थात्, हे सूर्य! मित्रवत् हो कर आज उदीयमान, आकाश में ऊपर उठते हुए मेरे हृदय रोग को और हरिमाण (क्षीण करनेवाले) रोग को नष्ट करें। अपने हरिमाण (क्षीण करनेवाले या विकृत रंग प्रकट करनेवाले) रोग को शुकों में, रोपणकों में स्थापित करता हूँ और हरिद्रवों (वनस्पतियों) में स्थापित करता हूँ। ये आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग का विनाश करते

हुए समस्त तेज के साथ उदित हुए हैं, मैं स्वयं अनिष्टकारी रोग का विनाश नहीं करता हूँ (अपितु, सूर्य ही रोग का विनाश करते हैं)।

उपर्युक्त तीनों मन्त्रों में शारीरिक अस्वस्थता को प्रकट करने के लिए तीन शब्दों, क्रमशः रोग, 'हरिमाणं', और 'द्विषत्' का प्रयोग किया गया है। इनमें से पहला शब्द रोग, विशेषकर हृदय रोग, स्वतः स्पष्ट हैं। 'रुज्' धातु से व्युत्पन्न रोग शब्द पीडादायी, क्षति करनेवाली शारीरिक अवस्था को दर्शाता है। वैदिक संस्कृत से लेकर आज तक अनेकानेक भारतीय और विदेशी भाषाओं, जैसे हिन्दी, बंगला, तेलगु, तमिल, थाई, ख्मेर, आदि में रोग शब्द इसी अर्थ में प्रचलित है।

आचार्य सायण ने 'हरिमाणम्' शब्द को 'हृञ् हरणे' धातु से व्युत्पन्न मानते हुए इस शब्द को शरीर की शक्ति, या कान्ति, या समस्थिति को हरनेवाले रोगों के अर्थ में लिया गया है। वैकल्पिक रूप से हरित् शब्द हरे रंग का बोधक है। अतः सायणाचार्य ने हरे रंग (हरित वर्ण) वाले शारीरिक रोग के रूप में भी इसका अर्थ लिया है। वेदों में इन्द्र और सूर्य के घोड़ों का रंग हरित् कहा गया है। वैदिक विद्वानों के अनुसार श्याम वर्ण में पीला मिलाकर जिस फीकेपन की उत्पत्ति होती है, ऐसा ही फीका पीला-भूरा रंग हरिदश्व का माना गया है। अतः 'हरिमाणं' शब्द ऐसे रोगों को इंगित करता है, जिनमें शरीर का सामान्य रंग विकृत या फीका हो जाए अथवा शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाए।

'द्विषत्' शब्द की व्युत्पत्ति 'द्विष्' धातु से हुई है जो शत्रुता एवं घृणा या प्रतिकर्षण के भाव को दर्शाता है। आधुनिक हिन्दी में मनमुटाव के लिए 'द्वेष' शब्द प्रचलित है, लेकिन अस्वस्थता के लिए 'द्विषत्' शब्द का प्रयोग अब प्रचलन में नहीं है। अस्तु, इस मन्त्र में यह भाव भी है कि ऋतु विशेष में प्रकट होनेवाली ऐसी अनिष्टकारी व्याधि, जिस पर स्वयं का वश नहीं है, जिसे देखने पर मन में घृणा का भाव आए।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त तीनों मन्त्रों में उदीयमान या आरोही सूर्य के प्रति रोगनाश के निमित्त प्रार्थना की गई है। प्रथम मण्डल के सूक्त 50 में सूर्योपस्थान के मन्त्र हैं। इनमें प्रथम (उदुत्यम् जातवेदसम्) और एकादश मन्त्र (उद्वयं तमसस्परि) को नित्य सन्ध्या में उच्चारण किया जाता है। सन्ध्या को त्रिकाल अर्थात् सूर्योदय से पूर्व, मध्याह्न और सूर्यास्त से कुछ पूर्व के समय में सम्पन्न किए जाने का विधान है। मध्याह्न से अगले प्रहर के बीच सन्ध्याकाल

"विषाणु यानि वायरस तो डी.एन.ए. या आर.एन.ए. के कण मात्र होते हैं किन्तु जीवित कोशिका में प्रवेश करने के बाद विभाजन करने में समर्थ हो जाते हैं। अधिकांश वायरस भीषण रोगों का कारण होते हैं। हाल ही में हुए शोधों में सीधी धूप से कोरोना विषाणु को नष्ट करने की क्षमता प्रमाणित हुई है। आचार्य शौनक ने निःसन्देह सूर्य की पराबैंगनी किरणों के इसी गुण को 'रोगघ्नश्च विषघ्नश्च' कहा होगा।"

नहीं है, जिस समय अवरोही सूर्य की किरणें पृथ्वी सीधी पड़ रही होती हैं और उनकी तीक्ष्णता सबसे अधिक होती है।

विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो सूर्य से निरन्तर विद्युत चुम्बकीय विकिरणों (इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक रेडिएशन) का उत्सर्जन होता है। ये विकिरण एक बड़ा विस्तार (स्पेक्ट्रम) बनाते हैं, जिनके मध्य में सात रंगों बैंगनी, नीली, मयूर, हरित, पीली, नारंगी, एवम् लाल रंग वाली किरणें हैं, जिनसे दृश्यमान प्रकाश बनता है। दृश्यमान प्रकाश सीमित है, लेकिन इसके दोनों ओर कहीं अधिक विस्तार उन विकिरणों के समूह का है जिनकी तरंगें क्रमशः या तो प्रकाश की बैंगनी किरणों से छोटी हैं, यानि पराबैंगनी किरणें, एक्स, और गामा किरणें, या फिर लाल किरणों से लम्बी हैं, यानि अवरक्त किरणें, माइक्रोवेव, और रेडियो तरंगें। लाल वर्ण से लम्बी किरणों में तपाने का गुण होता है और इसका उपयोग सिंकाई के लिए किया जाता है। बैंगनी वर्ण से छोटी किरणों की भेदन क्षमता अधिक होती है और ये विकिरण एक सूक्ष्म प्राणी कोशिका को भेद कर उसके आधारभूत द्रव्य का विघटन कर सकते हैं । अतः यह विकिरण जीवन के लिए हानिकारक होते हैं। परमात्मा ने ऐसी व्यवस्था की है कि ऐसी अधिकाश सूक्ष्मभेदक किरणें पृथ्वी के वायुमण्डल की बाहरी परत में ही रुक जाती हैं। सूर्य स्पेक्ट्रम से केवल पराबैंगनी किरणें ही आंशिक रूप से पृथ्वी तक पहुँच पाती हैं। पराबैंगनी किरणें प्राणिकोशिका के भीतर स्थित जीवन के अनिवार्य घटक डी.एन.ए. को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष क्षति पहुँचाती हैं। एकल कोशिकाओं- जैसे जीवाणु या छोटी कोशिकाओं से पनपने वाली सूक्ष्मकाय प्रजातियों, फफूंदों, खमीर आदि में डी.एन.ए. नष्ट होने के परिणामस्वरूप उनका विभाजन रुक जाता है और उनका विनाश हो जाता है। सूक्ष्मकाय जीव प्रायः रोग फैलाते हैं, अतः यह स्थिति सूर्य की पराबैंगनी किरणों को रोगावरोधी गुण प्रदान करती है। घरों में सीलन, धूल भरे और अंधेरे स्थानों में में ऐसे जीवाणु बहुतायत में होते हैं। इसी कारण समानों को धूप में सुखाने का लोक-व्यवहार देखा जाता है। विषाणु यानि वायरस तो डी.एन.ए. या आर.एन.ए. के कण मात्र होते हैं, किन्तु जीवित कोशिका में प्रवेश करने के बाद विभाजन करने में समर्थ हो जाते हैं। अधिकांश वायरस भीषण रोगों का कारण होते हैं। हाल ही में हुए शोधों में सीधी धूप से कोरोना विषाणु को नष्ट करने की क्षमता प्रमाणित हुई है। आचार्य शौनक ने निःसन्देह सूर्य की पराबैंगनी किरणों के इसी गुण को 'रोगघ्नश्च विषघ्नश्च' कहा होगा।

यह सही है कि लम्बे समय तक तेज धूप में शरीर उघाड़ने पर सूर्य की पराबैंगनी किरणों द्वारा मनुश्य की कोशिकाओं में भी डी.एन.ए. या आर.एन.ए. पर विघटनकारी प्रभाव हो सकते हैं। ऑस्ट्रेलिया और ऊँचे अक्षांशों के देशों में ऐसे दुष्प्रभाव अधिक देखे गये हैं- जैसे त्वचा का झुलसापन, झुर्रियाँ, और त्वचा कैंसर या आँखों में चौंध के कारण होने वाला मोतियाबिंद; क्योंकि वहाँ पराबैंगनी विकिरण की मात्रा सामान्य से बहुत अधिक है। आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों ने 1930 से ही सूर्य की पराबैंगनी किरणों द्वारा मानव कोशिकाओं में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों का अध्ययन किया और अपने सीमित निश्कर्शों के आधार पर सूर्य किरणों से बचाव करने पर अनावश्यक बल दिया। इसका परिणाम यह रहा कि पाश्चात्त्य समाज में सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश के प्रति एक भय सा व्याप्त हो गया और वहाँ सूर्य से बचाव के

लिए सन-स्कीन-जैसी वस्तुओं तथा बन्द कमरों में रहने का प्रचलन बढ़ गया। बहुत से समुदायों में आपादमस्तक पर्दा प्रथा के कारण महिलाएँ सूर्य के प्राकृतिक प्रकाश से वंचित रहती हैं। अन्धकार के अभ्यस्त इन व्यक्तियों में ऐसे बहुत से रोग पाए जाते हैं जिनका प्रतिशत सामान्य जनसंख्या में, विशेषकर उष्ण कटिबन्धीय देशों, जैसे भारतीय हिन्दुओं में, बहुत कम होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आँकड़े दिए हैं कि सूर्य की किरणों के हारिकारक प्रभाव का भार संसार की सभी बीमारियों का मात्र 0.1 प्रतिशत है जबकि इससे 20 गुना से अधिक क्षति उन बीमारियों के कारण होती है जो कि सूर्य किरणों का सेवन नहीं करने के परिणामस्वरूप होती हैं। ऐसी बीमारियाँ विटामिन डी. की कमी के कारण होती हैं जिसका संश्लेषण त्वचा की कोशिकाओं में सूर्य की पराबैंगनी किरणों के प्रवेश से ही संभव होता है। सूर्य किरणों के द्वारा त्वचा की कोशिकाओं में विटामिन डी. की संश्लेषण होता है और यह पूरे शरीर में व्याप्त हो कर बहुआयामी प्रभाव डालता है।

विटामिन डी. शरीर में कैल्सियम के उपापचय के लिए आवश्यक है और शरीर की रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ाता है। विटामिन डी. की कमी से बच्चों में सूखा रोग हो जाता है, उनकी लंबाई बढ़ना रुक जाती है और कमजोर हड्डियों के कारण उनके पैर टेढ़े हो जाते हैं- जिसे अंग्रेजी में रिकेट्स कहते हैं । वयस्कों में विटामिन डी. की कमी से अस्थि-मृदुता यानि ऑस्टियोपोरोसिस नामक बीमारी होती है जिसमें हड्डियों में छेद हो जाते हैं और जरा सा आघात लगने पर वे टूट सकती हैं।

2008 में 'अन्तर्राष्ट्रीय महामारी विज्ञान' के एक जर्नल में विटामिन डी. के लाभकारी प्रभावों पर एक शोध-विश्लेषण प्रकाशित हुआ; जिसमें स्पष्ट किया गया कि पराबैंगनी किरणें, विशेषत: उदीयमान एवं पूर्वाह्न के सूर्य की किरणें, बहुत से रोगों का निवारण करती हैं। यक्ष्मा यानि टी. बी. रोग से ग्रस्त मरीजों को जब स्वास्थ्य लाभ के लिए धूप वाले स्थानों में भेजा गया तो उनके रोग के लक्षणों में 32 प्रतिशत तक गिरावट अंकित की गई।

'अमेरिकन जर्नल ऑफ क्लीनिकल न्यूट्रिशन' में वर्ष 2007 में प्रकाशित एक शोध में यह भी लिखा गया कि अनेक प्रकार के कैंसरों जैसे स्तन, प्रोस्टेट, फेफड़े, और बड़ी आँत के कैंसरों का खतरा विटामिन डी. और कैल्सियम के समुचित सेवन से 50 से 77 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया के महामारी विशेषज्ञ ने 'टॉक्सिकॉलजी' जर्नल में वर्ष 2002 में प्रकाशित एक शोध में स्पष्ट किया

"'अमेरिकन जर्नल ऑफ क्लीनिकल न्यूट्रिशन' में वर्ष 2007 में प्रकाशित एक शोध में यह भी लिखा गया कि अनेक प्रकार के कैंसरों जैसे स्तन, प्रोस्टेट, फेफड़े, और बड़ी आँत के कैंसरों का खतरा विटामिन डी. और कैल्सियम के समुचित सेवन से 50 से 77 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।"

कि मल्टिपल स्क्लेरोसिस अथवा बहुकाठिन्य नामक घातक बीमारी का खतरा उच्च अक्षांशों के निवासियों में 100 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। अनेकानेक शोधों में प्रमाणित किया गया कि बहुत सी ऑटोइम्यून यानि आत्म-प्रतिरक्षी बीमारियाँ जैसे आमवात संधिशोथ (रुमेटॉयड आर्थराइटिस), एज्मा (दमा), सोरायसिस (विचर्चिका) और विटिलिगो (श्वेतकुष्ठ या श्वित्र) तथा बहुत से संक्रामक रोगों का खतरा विटामिन डी. के समुचित मात्रा में सेवन से यर्थाथ रूप से कम हो जाता है।

"उल्लेखनीय है कि 19वीं शताब्दी में एनीमिया को क्लोरोसेस नाम से जाना जाता था जिनसे प्रभावित रोगियों के प्रमुख लक्षण होते थे शारीरिक दुर्बलता के साथ त्वचा का रंग का मलिन हो जाना। क्लोरोसेस का शाब्दिक अर्थ हरे रंग वाली बीमारी है और इसे 'ग्रीन सिकनेस' भी कहा जाता था। यही स्थिति मन्त्र 12 में 'हरिमाणं' शब्द से इंगित होती है।"

प्राय: देखा जाता है कि शीत ऋतु में, जब सूर्य की किरणें कम उपलब्ध होती हैं, इस प्रकार के रोगों की घटनाएँ अधिक हो जाती हैं। इसका कारण यह पता लगाया गया कि विटामिन डी. एक रसायन कैथेलिसाइडिन को प्रेरित करता है, जिसमें जीवाणुओं और विषाणुओं और अन्य प्रतिजनों से प्रभावकारी प्रतिरोध करने की क्षमता है। जाड़े में सूर्यातप की कमी के कारण शरीर में विटामिन डी. की मात्रा कम हो जाती है। परिणामस्वरूप कैथेलिसाइडिन में भी कमी आती है जिसकी वजह से स्वप्रतिरक्षी रोगों और संक्रामक रोगों में वृद्धि होती है।

हृदय रोग और रक्तचाप का विटामिन डी से सीधा संबंध पिछले मात्र 50 वर्षों में किए गए चिकित्सा शोधों से प्रमाणित हुआ है। है। 2008 में 'सर्कुलेशन' नामक जर्नल में हार्वर्ड के चिकित्सकों ने उच्च अक्षांशों पर धूप की अनुपलब्धता से विटामिन डी. की कमी के कारण वहाँ रहने वाले लोगों में उच्च रक्तचाप का होना प्रमाणित किया। विटामिन डी. रक्त की नालियों के तनाव को घटाता है और उनमें सूजन की व्याधि को सीधे कम करता है। आजकल हृदय रोग की चिकित्सा में विटामिन डी. और कैल्सियम के साथ धूप के सेवन की सलाह दी जाती है। अभी हाल के चिकित्सा शोधों में यह भी पाया गया है कि संक्रमण के परिणामस्वरूप शरीर में लौह तत्व की कमी हो जाती है क्योंकि संक्रामक जीवाणु अपनी वृद्धि के लिए रक्त में पाए जाने वाले लौह का प्रयोग करने लगते हैं। विटामिन डी. लौह के ऐसे शोषण को रोकता है। यदि लम्बे समय तक सूजन बनी रहे तो विटामिन डी. की कमी हो जाती है जिससे रक्त में लौह की अल्पता यानि एनीमिया हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप शरीर का रंग फीका हो जाता है। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि आने वाले समय में लोहे के औशधीय तत्व के साथ-साथ विटामिन डी. द्वारा भी एनीमिया का इलाज किया जाएगा।

उपरोक्त सभी बीमारियाँ तीन श्रेणियों में बाँटी जा सकती हैं

1. हृदय रोग तथा उच्च रक्तचाप – जिनसे हृदय की क्षमता शनैः शनैः नष्ट होती है। यह मंत्र 11 में 'हृद्रोग' शब्द से इंगित होता है। यह आश्चर्य का विषय है कि सूर्य किरणों से विटामिन डी. बनने और उसके कारण हृदय और परिसंचरण के रोगों से बचाव आधुनिक खोज है, जिसे न जाने कितनी सहस्राब्दियों पहले हमारे ऋषियों ने पता लगा लिया था।

2. सूखा रोग, संक्रामक रोग और अनेक प्रकार के कैंसर, एनीमिया– जिनसे शारीरिक ऊर्जा और कान्ति का क्षय होता है। उल्लेखनीय है कि 19वीं शताब्दी में एनीमिया को क्लोरोसेस नाम से जाना जाता था जिनसे प्रभावित रोगियों के प्रमुख लक्षण होते थे शारीरिक दुर्बलता के साथ त्वचा का रंग का मलिन हो जाना। क्लोरोसेस का शाब्दिक अर्थ हरे रंग वाली बीमारी है और इसे 'ग्रीन सिकनेस' भी कहा जाता था। यही स्थिति मन्त्र 12 में 'हरिमाणं' शब्द से इंगित होती है। शरीर का 'हरिमाण' रोग जिसे ऋषि ने शुकों में, मैना नामक पक्षी में, हरिताल नामक लता के झुरमुट में स्थापित करना चाहा है, क्या एक औषधि वर्ग है जो कि इन रोगों की चिकित्सा में विटामिन डी. के साथ प्रभावी है, यह भी शोध का विषय हो सकता है।

3. प्रतिरक्षा (इम्यूनिटी) से सम्बन्धित रोग– रूमेटॉइड आइटिस (आमवात संधि शोध) और प्राथमिक श्वित्र (विटीलिगो) या विचर्चिका (सोरायसेस) नामक त्वचा रोग इस श्रेणी में आते हैं। इन रोगों के फलस्वरूप होने वाली शारीरिक विकृति और त्वचा की विरूपता के कारण रोगियों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होने लगता है। यह मंत्र 13 में द्विषत् शब्द से इंगित होता है। इन रोगों में प्राथमिक श्वित्र (विटीलिगो)या विचर्चिका (सोरायसेस) का इलाज तो सूर्य किरणों से किया जाता है जिसे फोटोथेरेपी कहा जाता है। मंत्र 13 में स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि सूर्य मेरे लिए उपद्रव करने वालों की हिंसा करते हैं, जबकि मैं अनिष्ट करनेवाले (द्विषते) रोगों की हिंसा नही करता हूँ। स्पष्टतः ये रोग स्वप्रतिरक्षी (ऑटोइम्यून) प्रकार के हैं।

जहाँ तक सूर्य किरणों के कारण होने वाली बीमारियों, जैसे त्वचा कैंसर का प्रश्न है, तो परमात्मा ने मनुष्यों को इन दुष्प्रभावों से बचाने के लिए दो व्यवस्थायें की हैं–

पहली यह कि हमारे देश और समरूप उष्ण कटिबन्ध के निवासियों की त्वचा में वर्णक कोशिकाएँ पायी जाती हैं, जिनसे त्वचा का रंग साँवला हो जाता है और उस पर सूर्य की पराबैंगनी किरणें कम प्रभाव डालती हैं। हमारी संस्कृति में श्यामवर्ण सौन्दर्य का द्योतक है और पाश्चात्त्य संस्कृति में सूर्य किरणों से त्वचा को गहरा रंग देना (जिसे टैनिंग कहते हैं) एक फैशन है। दूसरा यह कि दिन भर में पृथ्वी पर सूर्य की पराबैंगनी किरणें एकरूप नहीं पड़ती हैं। अपराह्न में ये सबसे अधिक मात्रा में पहुँचती हैं, जबकि प्रातःकाल से दिन के प्रथम प्रहर तक इनकी मात्रा बहुत कम होती है। हिन्दुओं ने सिर पर पगड़ी या आँचल की छाया का आचार अपनाया, लेकिन बुर्का नही। यात्रा के मार्ग पर छायादार वृक्षों को लगाना पुण्य कार्य माना गया। राजाओं के लिए छतरी का प्रयोग उचित है, तो ब्रह्मचारी के लिए सूर्य की ओर सीधे देखने का निषेध किया गया; ताकि आँखों का लैंस मोतियाबिंद से सुरक्षित रहे। पूजा अर्चना की गतिविधियाँ जैसे संध्या–हवन, आदि का प्रातःकालीन विधान और मध्याह्न से साँयकाल तक मन्दिरों के पट बन्द रखना भी प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप है।

***